1

पारिस्थितिकी एवं पर्यावरण
[ECOLOGY AND ENVIRONMENT]

पारिस्थितिकी (Ecology) शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम जर्मन वैज्ञानिक **अन्सर्ट हैकल** ने 1869 ई० में किया था। इससे अभिप्राय किसी समुदाय के निर्जीव पर्यावरण तथा उसमें पाए जाने वाले जीवधारियों की समग्र व्यवस्था का अध्ययन करने वाला विज्ञान है। सन्तुलित पर्यावरण को पारिस्थितिकतन्त्र (Ecosystem) कहा जाता है। इस शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम **ए० जी० टैन्सले** नामक वैज्ञानिक ने 1935 ई० में किया था। पर्यावरण के जैविक एवं अजैविक, सभी कारकों के परस्पर सम्बन्धों को पारिस्थितिकतन्त्र कहा जाता है। जब इसमें मानवीय प्रयासों के परिणामस्वरूप अवक्रमण होता है तो उसे पारिस्थितिकीय अवक्रमण कहा जाता है।

पारिस्थितिकी का अर्थ

पारिस्थितिकी शब्द से अभिप्राय एक ऐसे जाल से है जहाँ भौतिक एवं जैविक व्यवस्थाएँ तथा प्रक्रियाएँ घटित होती हैं और मनुष्य भी इसका एक अंग होता है। पर्वत तथा नदियाँ, मैदान तथा सागर और जीव-जन्तु ये सब पारिस्थितिकी के अंग हैं। पारिस्थितिकी प्राणि-मात्र और उसके पर्यावरण के मध्य अन्त:सम्बन्ध का अध्ययन है। इसे विज्ञान का एक ऐसा बहुवैषयिक क्षेत्र माना जाता है जिसमें आनुवंशिकी, समाजशास्त्र, नृविज्ञान आदि अनेक विषयों से सुव्यवस्थित रूप से ज्ञान लिया जाता है। समाजशास्त्री होने के नाते हमारी रुचि मानव और उसके पर्यावरण के मध्य अन्त:सम्बन्ध में है। यहाँ पर्यावरण से तात्पर्य प्राकृतिक पर्यावरण से है जिसमें वन, नदियाँ, झील, समुद्र, पहाड़, पौधे आदि आते हैं। चूँकि पारिस्थितिकीय परिवर्तन मानव जीवन पर गहरा प्रभाव डालता है, इसलिए समाजशास्त्र में इसका अध्ययन किया जाता है।

सामान्य अर्थों में पारिस्थितिकी को भौतिक या प्राकृतिक शक्तियों तक ही सीमित रखा जाता है। यह सही नहीं है। पारिस्थितिकी केवल प्राकृतिक शक्तियों तक सीमित न होकर प्राकृतिक एवं जैविक व्यवस्थाओं में अन्त:सम्बन्ध पर बल देती है। मानवीय समाज पर चूँकि पारिस्थितिकी का गहरा प्रभाव पड़ता है इसलिए इसे केवल प्राकृतिक शक्तियों तक सीमित करना उचित नहीं है। बहुत बड़ी सीमा तक किसी समाज की संस्कृति मानवीय विचारों तथा व्यवहार पर पारिस्थितिकी के गहन प्रभाव को प्रतिबिम्बित करती है, व्यवसाय, भोजन, वस्त्र, आवास, धर्म, कला, आचार, विचार एवं इसी प्रकार के मानव निर्मित अनेक सांस्कृतिक सृजन पारिस्थितिकी से ही प्रभावित होते हैं। किसी स्थान की पारिस्थितिकी पर वहाँ के भूगोल तथा जलमण्डल की अन्तर्क्रियाओं का भी प्रभाव पड़ता है। उदाहरणार्थ, मरुस्थलीय प्रदेशों में रहने वाले जीव-जन्तु अपने आपको वहाँ की परिस्थितियों (न्यून वर्षा, पथरीली अथवा रेतीली मिट्टी तथा अत्यधिक तापमान) के अनुरूप अपने आप को ढाल लेते हैं। इसी प्रकार, पारिस्थितिकीय कारक इस बात का निर्धारण भी करते हैं कि किसी स्थान विशेष पर लोग कैसे रहेंगे। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि पारिस्थितिकी केवल प्राकृतिक शक्तियों तक ही सीमित नहीं है।

सामाजिक पर्यावरण का उद्‌भव जैव भौतिक पारिस्थितिकी तथा मनुष्य के हस्तक्षेप की अन्तर्क्रिया के द्वारा होता है। यह प्रक्रिया दो-तरफा होती है। जिस प्रकार से प्रकृति समाज को आकार देती है, ठीक उसी प्रकार से समाज भी प्रकृति को आकार देता है। उदाहरणार्थ, सिन्धु-गंगा के बाढ़ के मैदान की उपजाऊ भूमि गहन कृषि के लिए उपयुक्त है। इसकी उच्च उत्पादन क्षमता के कारण यह घनी आबादी का क्षेत्र बन जाता है। ठीक इसके विपरीत, राजस्थान के मरुस्थल केवल पशुपालकों को सहारा देते हैं जो अपने पशुओं के चारे की खोज में एक स्थान से दूसरे स्थान तक भटकते रहते हैं। इन उदाहरणों से पता चलता है कि किस प्रकार पारिस्थितिकी मनुष्य के जीवन और उसकी संस्कृति को आकार देती है।

दूसरी ओर, पूँजीवादी सामाजिक संगठनों ने विश्व भर की प्रकृति को आकार दिया है। निजी परिवहन पूँजीवादी वस्तु का एक ऐसा उदाहरण है जिसने जीवन तथा भू-दृश्य को बदला है। नगरों में वायु प्रदूषण तथा भीड़भाड़, प्रादेशिक झगड़े, तेल के लिए युद्ध तथा विश्वव्यापी तापमान वृद्धि आदि पर्यावरण पर होने वाले प्रभावों के कुछ उदाहरण हैं। इसीलिए यह माना जाता है कि बढ़ता हुआ मानवीय हस्तक्षेप पर्यावरण को पूरी तरह से बदलने में सक्षम है।

सम्पूर्ण विश्व में आर्थिक विकास की जो कीमत चुकानी पड़ी है उसमें विस्थापन के अतिरिक्त पारिस्थितिकीय अवक्रमण (जिसे अधोगति अथवा निम्नीकरण भी कहा जा सकता है) की समस्या भी प्रमुख

मानी जाती है। पारिस्थितिकीय अवक्रमण वन क्षेत्र में होने वाली कमी, पानी की सतह नीचे होने तथा भूमि कटाव के रूप में देखा जा सकता है। प्राकृतिक साधनों का अवक्रमण एक विश्व स्तर की समस्या बन गई है। तीव्र औद्योगीकरण व नगरीकरण, गहन कृषि, जनसंख्या विस्फोट, खनन तथा अन्य मानवीय क्रियाओं के परिणामस्वरूप भूमि तथा पानी के स्रोतों का अवक्रमण हुआ है।

भारत का आधे से अधिक भौगोलिक क्षेत्र किसी-न-किसी प्रकार के पारिस्थितिकीय अवक्रमण से प्रभावित हुआ है। वनों का बड़ी तेजी से विनाश हुआ है तथा पानी के स्रोत (नदियों, झीलों तथा जमीन के नीचे पानी) कम होते जा रहे हैं तथा पानी की गुणवत्ता प्रभावित होती जा रही है। प्राकृतिक साधनों का अवक्रमण आर्थिक विकास का परिणाम तो है ही यह भारत जैसे विकासशील देश में सामाजिक-आर्थिक विकास तथा विश्व पर्यावरण के लिए खतरा बनता जा रहा है।

पारिस्थितिकीय अवक्रमण के कारण

भारत में पारिस्थितिकीय अवक्रमण के निम्नलिखित कारण हैं—

(1) वनों का विनाश—वनों की लकड़ी के व्यावसायिक प्रयोग तथा जड़ी-बूटियों हेतु किए जाने वाले वनों के कटाव के परिणामस्वरूप भारत में वन क्षेत्र बड़ी संख्या से कम होता जा रहा है। जितने पेड़ लगाए जाते हैं उससे कहीं अधिक संख्या में काटे जाते हैं। ऐसा कहा जाता है कि भारत में वन गाँवों से दूर होते जा रहे हैं। अनेक बार तो निहित स्वार्थों द्वारा बड़े पैमाने पर वनों में आग लगा दी जाती है। गर्मियों में ग्रामवासी वनों में आग इसलिए भी लगा देते हैं कि बरसात के बाद अच्छा घास उपलब्ध हो पाएगा। अनेक बार तो विभागीय स्तर पर भी वनों के कुछ हिस्से पर आग इसलिए लगा दी जाती है ताकि उसे कृषि योग्य बनाया जा सके और आग को पूरे वन क्षेत्र में फैलने से बचाया जा सके। इससे मूल्यवान पेड़ नष्ट हो जाते हैं। विकास के नाम पर बनाए जाने वाले बड़े-बड़े बाँध भी पारिस्थितिकीय अवक्रमण विकसित करते हैं।

(2) भूमि या मृदा कटाव—भूमि एक मूल्यवान भौतिक सम्पदा मानी जाती है। जब तक पारिस्थितिकतन्त्र में किसी प्रकार की दखलअन्दाजी नहीं की जाती या यह कम-से-कम की जाती है तो भूमि का निरन्तर उत्पादन एवं सम्पन्नीकरण होता रहता है। जब इस पर पेड़-पौधों का प्राकृतिक आवरण कम हो जाता है तो भूमि कटान प्रारम्भ हो जाता है। भू-स्खलन (Landslides) एवं गाद भरने (Siltation) के परिणामस्वरूप भी भूमि कटाव से पारिस्थितिकीय अवक्रमण की स्थिति पैदा हो जाती है।

(3) जल स्रोतों की कमी—पानी जीवन के लिए अत्यन्त आवश्यक तत्त्व है। भारत में जल स्रोतों की भी निरन्तर कमी होती जा रही है तथा भूमि के नीच पानी का स्तर और नीचे होता जा रहा है। ऐसा अनुमान लगाया जाता है कि अगर यही स्थिति रही तो कुछ ही दशकों में पानी की अत्यधिक कमी हो जाएगी। कृषि उत्पादन बढ़ाने हेतु खादों के प्रयोग से पानी प्रदूषित होता जा रहा है तथा कम वर्षा के परिणामस्वरूप नदियों में पानी का स्तर कम होता जा रहा है। मरुस्थल का निरन्तर विस्तार होता जा रहा है। यह पारिस्थितिकीय अवक्रमण का ही द्योतक है।

(4) खतरनाक उद्योग—अनेक बार औद्योगिक विकास के परिणामस्वरूप भी पारिस्थितिकीय संकट पैदा हो जाता है। उदाहरणार्थ, दून घाटी में चूने के उद्योग के परिणामस्वरूप पर्यावरण को काफी नुकसान पहुँचा है। इससे पानी का स्तर काफी नीचे पहुँच गया है, पेड़ धूल से भरे हुए रहते हैं तथा चूने की भट्टियों से हानिकारक गैसों का स्राव होता रहता है। इसी प्रकार, टिहरी बाँध के परिणामस्वरूप भी उपजाऊ भूमि के बहुत बड़े भाग को नष्ट कर दिया गया है।

सरकार ने भारत में बढ़ते हुए पारिस्थितिकीय अवक्रमण को देखते हुए आर्थिक विकास और पर्यावरण संरक्षण की दीर्घकालिक नीति बनाई है। इसके अन्तर्गत पारिस्थितिकीय अवक्रमण को रोकने एवं प्रदूषण नियन्त्रण हेतु चरणबद्ध ढंग से अनेक कार्यक्रम लागू किए गए हैं। अनेक गैर-सरकारी संगठनों को भी इस कार्य में सहयोग देने हेतु आर्थिक सहायता दी जा रही है। 2002 ई० में नवीन राष्ट्रीय जल नीति को स्वीकृति प्रदान की गई है। इस योजना के अन्तर्गत देश के जल संसाधनों के विकास की ओर विशेष ध्यान दिया जा रहा है। राष्ट्रीय जल बोर्ड, राष्ट्रीय जल संसाधन परिषद्, केन्द्रीय भूमिगत जल प्राधिकरण तथा सम्बन्धित जल संसाधन विकास योजना द्वारा इस दिशा में अनेक कदम उठाए गए हैं जिनसे आंशिक सफलता ही मिल पाई है। पर्यावरणीय सम्बन्धी शिक्षा एवं सामान्य जागरूकता द्वारा ही मिलने वाला नागरिकों का सहयोग इस समस्या के समाधान में सार्थक सिद्ध हो सकता है।

पारिस्थितिकीय अवक्रमण के सामाजिक परिणाम

पारिस्थितिकीय अवक्रमण को पर्यावरणीय प्रदूषण का प्रमुख कारण माना जाता है। इसके प्रमुख सामाजिक परिणाम निम्न प्रकार हैं—

(1) पारिस्थितिकीय अवक्रमण से होने वाले पर्यावरणीय प्रदूषण का मानव स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ता है। हृदय रोग, कैंसर, श्वांस, पक्षाघात, पोलियो, रुधिर चाप, अनिद्रा, हैजा, क्षय रोग, पेचिश इत्यादि प्रदूषण के ही परिणाम हैं। पारिस्थितिकीय अवक्रमण का जीव जन्तुओं पर भी बुरा प्रभाव पड़ता है।

(2) पारिस्थितिकीय अवक्रमण का प्रमुख कारण विकास-प्रवृत्त योजनाएँ हैं जिनके परिणामस्वरूप विस्थापन की समस्या विकराल रूप धारण कर लेती है। एक टिहरी बाँध ने ही 70,000 पहाड़ी लोगों को विस्थापित कर दिया। इस अवक्रमण के कारण भूकम्प का खतरा भी बढ़ जाता है।

(3) पारिस्थितिकीय अवक्रमण के परिणामस्वरूप सामाजिक संस्थाएँ एवं व्यक्तियों का जीवन स्तर भी प्रभावित होने लगता है। जल के प्रदूषित होने से कैंसर एवं कुबड़ेपन होने सम्बन्धी अनेक मामले सामने आए हैं। वन सम्पदा नष्ट होने के कारण देश में उपलब्ध संसाधन भी क्षीण होने लगते हैं।

(4) पारिस्थितिकीय अवक्रमण प्रदूषण को बढ़ावा देकर मानवीय कार्यक्षमता को भी कम करता है।

उपर्युक्त परिणामों से स्पष्ट है कि पारिस्थितिकीय अवक्रमण के अनेक नकारात्मक प्रभाव हैं। सभी समाजों को इन प्रभावों को सहन करने हेतु इसलिए विवश होना पड़ता है क्योंकि यदि देश का विकास करना है तो अवक्रमण होगा ही। इतना अवश्य है कि अनेक उपायों द्वारा इसे न्यूनतम स्तर पर रखने का प्रयास किया जा सकता है।

पारिस्थितिकीय अवक्रमण के उन्मूलन हेतु सुझाव

पारिस्थितिकीय अवक्रमण की समस्या के समाधान हेतु निम्नलिखित सुझाव दिए जा रहे हैं—

(1) कानूनों का निष्ठापूर्वक पालन—कानून बनाने से ही समस्या हल नहीं हो जाती। सबसे अधिक आवश्यक है कि उनका कड़ाई से पालन कराया जाए। इसके लिए उपयुक्त अधिकारियों एवं कर्मचारियों की भी आवश्यकता है। इसके लिए एक अलग सेना का गठन किया जाए और कर्मचारियों की भर्ती और प्रशिक्षा विशिष्ट ढंग से की जाए।

(2) जन जागरण एवं जन सहयोग—वास्तव में एक राष्ट्रीय पर्यावरण नीति के अन्तर्गत पर्यावरण के सम्बन्ध में जन शिक्षा के प्रसार की तीव्र आवश्यकता है। जब तक जन-मानस प्रकृति, मनुष्य और समाज के गहरे रिश्ते को नहीं समझेगा तब तक पर्यावरणीय प्रदूषण बना ही रहेगा। इसीलिए आवश्यक है कि पर्यावरण की सुरक्षा के लिए जन आन्दोलन चलाया जाए और उसमें जन सहभागिता को बढ़ाया जाए।

(3) विकेन्द्रित विकास—समाज की रचना का आधार विकेन्द्रित व्यवस्था पर रखा जाना चाहिए। प्राणवायु, स्वच्छ और जीवन्त जन, खुराक, आश्रय तथा वस्त्र की अनिवार्य आवश्यकताओं की पूर्ति आस-पास के क्षेत्र से हो सके, इसके लिए विकेन्द्रित विकास की योजनाएँ बनानी होंगी। इस दृष्टि से हमें पुन: गांधी जी के ग्राम-स्वराज्य की अवधारणा की प्रासंगिकता को समझना होगा। सीधे-सादे शब्दों में, विकास के नियोजन की इकाई गाँवों को बनाना होगा। जब उपभोग घर-घर और गाँव-गाँव में होता है तो उत्पादन केन्द्रित ढंग से क्यों किया जाए? विकेन्द्रित उत्पादन से प्रदूषण की समस्या स्वत: हल हो जाएगी क्योंकि उच्च ऊर्जा प्रयोग करने वाले और अपनी बड़ी-बड़ी चिमनियों से धुआँ उगलने वाले कारखाने ही वहाँ नहीं होंगे। लघु उद्योगों के लिए आणविक या ताप बिजलीघरों की आवश्यकता भी नहीं है। इस व्यवस्था में ऊर्जा की प्राथमिकता भी बदल जाएगी। इसमें पशु शक्ति, बायोगैस, सौर ऊर्जा, पवन शक्ति, नदियों के सीधे बहाव से जल, विद्युत और लहरों की शक्ति से ही काम किया जा सकेगा।

(4) समाकलित जीवन शैली—आज एक समाकलित जीवन दर्शन एवं शैली की आवश्यकता है। बहुत-से लोग, जिसमें विद्वान् भी शामिल हैं, कहते हैं कि विकेन्द्रीकरण और सादगी भारत जैसे गरीब देशों के लिए ही हो सकती है। परन्तु ऐसा नहीं है। संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण और विकास आयोग ने समृद्ध देशों को स्पष्ट चेतावनी दी है कि जब तक वे सादगी का जीवन नहीं बिताते, तब तक विश्व में न तो पर्यावरण की ही रक्षा हो सकती है और न विकास ही सम्भव है। यूरोप में अधिकांश देश पर्यावरणीय सुरक्षा के प्रति चिन्तित हैं। वहाँ कोई भी राजनेता आज पर्यावरण के कारक की उपेक्षा नहीं कर सकता। चुनावों में हुई पर्यावरणवादियों की विजय इस तर्क को सिद्ध करती है। यूरोप का हरित आन्दोलन पश्चिमी जगत के सामने एक नया रास्ता रख रहा

है जिसे वे सीधा रास्ता कहते हैं। यह रास्ता वाम और दक्षिण दोनों ही पंथों से सर्वथा अलग है। इस आन्दोलन के घोषणा-पत्र को पढ़ने से ऐसा लगता है कि मानो वह गांधी के 'हिन्द स्वराज्य' का ही नवीन रूप हो।

पर्यावरण का अर्थ

'पर्यावरण' को अंग्रेजी में **'एनवायरनमेण्ट'** (Environment) कहा जाता है। पर्यावरण दो शब्दों से बना होता है—**'परि' + 'आवरण'**। 'परि' शब्द का अर्थ होता है **'चारों ओर से'** एवं 'आवरण' शब्द का अर्थ होता है **'ढके या घेरे हुए'**। अन्य शब्दों में, 'पर्यावरण' शब्द का अर्थ उस सबसे है, जो हमसे अलग होने पर भी हमें चारों ओर से ढके या घेरे रहता है। इस प्रकार किसी जीव या वस्तु को जो-जो वस्तुएँ, विषय, जीव एवं व्यक्ति आदि प्रभावित करते हैं, वे सब उसका पर्यावरण हैं। पर्यावरण अनुकूल भी हो सकता है और प्रतिकूल भी। जब पर्यावरण अनुकूल होता है तो उससे प्रभावित होने वाली वस्तु का विकास होता है और जब प्रतिकूल होता है तो विकास अवरुद्ध हो जाता है। उदाहरण के लिए एक बीज को यदि उपजाऊ भूमि में डाल दिया जाए और पानी नहीं दिया जाए तो प्रतिकूल वातावरण के कारण वह नष्ट हो जाएगा। इसी प्रकार मनुष्य का विकास भी अनुकूल व प्रतिकूल वातावरण से भिन्न-भिन्न रूप में प्रभावित होता है। मैकाइवर एवं **पेज** (MacIver and Page) ने पर्यावरण को सम्पूर्ण पर्यावरण मानते हुए इसकी परिभाषा इन शब्दों में दी है, ''सम्पूर्ण पर्यावरण से हमारा तात्पर्य उस सब-कुछ से है जिसका अनुभव मनुष्य करता है, जिसका निर्माण करने के लिए वह सक्रिय रहता है तथा जिससे वह स्वयं प्रभावित भी होता है।''

पर्यावरण की संकल्पना को इसकी निम्नलिखित विशेषताओं से और अधिक स्पष्ट किया जा सकता है—

1. पर्यावरण भौतिक तथा जैविक तत्त्वों का समूह है जो अपार शक्ति के भण्डार हैं।
2. पर्यावरण में विशिष्ट भौतिक प्रक्रिया क्रियाशील रहती है।
3. पर्यावरण का प्रभाव सभी प्राणियों का प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष दोनों रूपों में पड़ता है।
4. पर्यावरण स्वयंपूर्ति तथा स्वनियन्त्रित प्रणाली पर आधारित होता है।
5. पर्यावरण में परिवर्तन की प्रक्रिया निरन्तर होती रहती है।
6. पर्यावरण में क्षेत्रीय विविधता होती है।
7. पर्यावरण में पार्थिव एकता पायी जाती है।
8. पर्यावरण जीवधारियों का निवास-क्षेत्र है।

पर्यावरण का समाज पर गहरा प्रभाव पड़ता है। इसीलिए पर्यावरण व्यवस्था समाज के लिए महत्त्वपूर्ण मानी जाती है परन्तु पर्यावरण प्रबन्धन एक कठिन कार्य है। औद्योगीकरण के कारण संसाधनों के बड़े पैमाने पर दोहन ने पर्यावरण के साथ मनुष्य के सम्बन्ध और जटिल बना दिए हैं। इसीलिए यह माना जाता है कि आज हम जोखिम भरे समाज में रह रहे हैं जहाँ ऐसी तकनीकों तथा वस्तुओं का हम प्रयोग करते हैं जिनके बारे में हमें पूरी समझ नहीं हैं। नाभिकीय विपदा (जैसे चेरनोबिल काण्ड, भोपाल गैस काण्ड, यूरोप में फैली 'मैड काऊ' बीमारी आदि) औद्योगिक पर्यावरण में होने वाले खतरों को दिखाते हैं। संसाधनों में निरन्तर होने वाली कमी, प्रदूषण, वैश्विक तापमान वृद्धि, जैनेटिकली मोडिफाइड आर्गेनिज्म, प्राकृतिक एवं मानव निर्मित पर्यावरण विनाश आदि पर्यावरण की प्रमुख समस्याओं एवं जोखिमों ने पर्यावरण व्यवस्था को समाज के लिए न केवल महत्त्वपूर्ण बना दिया है, अपितु इसे ऐसी जटिल व्यवस्था बना दिया है कि इसका प्रबन्धन अधिकांश समाज उचित ढंग से नहीं कर पा रहे हैं।

पर्यावरणीय प्रदूषण क्या है?

पर्यावरणीय प्रदूषण को स्पष्ट करने से पहले यह उचित होगा कि हम पर्यावरण का अर्थ स्पष्ट कर दें। 'पर्यावरण' शाब्दिक दृष्टि से 'परि आवरण' दो शब्दों से बना है। 'परि' का अर्थ है— चारों ओर, और 'आवरण' का अर्थ है—ढकने वाला। इस भाँति, साहित्यिक दृष्टि से पर्यावरण का अर्थ उन तमाम भौतिक और सामाजिक-सांस्कृतिक वस्तुओं और परिस्थितियों से है जो मानव जीवन को चारों ओर से घेरे हुए हैं और उसे प्रभावित करती हैं। मानव, व्यक्तिगत रूप से भी और संस्थागत रूप से भी, अपने पर्यावरण को एक अर्थ प्रदान करता है और उस अर्थ के अनुसार उसके प्रति प्रतिक्रिया करता है। भौतिक दृष्टि से इस भूमण्डल के चारों ओर के ग्रह और उपग्रह, वातावरण, जलवायु तथा पृथ्वी की सतह की मिट्टी, जल, वनस्पति एवं पशु-पक्षी, पहाड़

तथा पृथ्वी के गर्भ में छिपा तेल, कोयला, लोहा और अन्य खनिज पर्यावरण में शामिल होते हैं। मनुष्य ने इन सभी को विशेष अर्थ प्रदान किया है, कहीं इन्हें पूजा है, कहीं इनका दोहन किया है तो कहीं इनमें संशोधन किया है। सामाजिक-सांस्कृतिक दृष्टि से वे सभी विचार और वस्तुएँ पर्यावरण में सम्मिलित होती हैं जो मानव द्वारा निर्मित हैं; जैसे रासायनिक पदार्थ, मशीनें, कल-कारखाने, सड़कें, बाँध, पुल, भवन, यातायात और संचार के साधन, भाषा, धर्म तथा परिवार-व्यवस्था आदि। इन सभी भौतिक एवं सामाजिक- सांस्कृतिक परिस्थितियों से मिलकर बनता है मानव का 'कुल पर्यावरण' (Total environment)। मनुष्य और उसके कुल पर्यावरण के बीच एक अन्तर्क्रिया चलती रहती है जो परस्पर प्रभावोत्पादक है।

वैज्ञानिक दृष्टि से और प्रदूषण के सन्दर्भ में यदि पर्यावरण को परिभाषित किया जाए तो कहा जा सकता है कि पर्यावरण से आशय उस जैव-मण्डल से है जो पृथ्वी पर जीवनदायिनी शक्तियाँ एवं जीवन के आधारों को प्रदान करने वाली शक्तियों की व्यवस्था से सम्बन्धित है। इसमें जल, वायु, तापमान, प्राकृतिक साधन आदि सम्मिलित होते हैं।

वास्तव में, पर्यावरण में एक लय और सन्तुलन है; जैसे जब तापमान बढ़ता है तो समुद्र से भाप बनकर बादल उठते हैं और उन स्थानों की ओर चलते हैं जहाँ तापमान बहुत अधिक हो गया है। इसी भाँति, तापमान की अधिकता से बर्फीली चोटियाँ पिघलती हैं और नदियों में पानी आता है। वर्षा का पानी पृथ्वी की तपिश बुझाता हुआ, झरनों एवं झीलों की गोद भरता हुआ फिर नदियों के माध्यम से समुद्र में आ जाता है। मनुष्य को भौतिक समृद्धि की चाह ने पर्यावरण की इस लय तथा सन्तुलन को बिगाड़ दिया है, इसमें व्यवधान उपस्थित कर दिया है। यह पर्यावरण असन्तुलन ही प्रदूषण का मूल स्रोत है।

इस प्रकार, पर्यावरणीय प्रदूषण से आशय जैव-मण्डल में ऐसे तत्त्वों का समावेश है जो जीवनदायिनी शक्तियों, को नष्ट कर रहे हैं। उदाहरणार्थ, रूस में चेरनोबिल के आणविक बिजलीघर से एक हजार कि० मी० क्षेत्र में रेडियोधर्मिता फैल गई जिससे मानव जीवन के लिए ही अनेक संकट पैदा हो गए। आज इस दुर्घटना के बाद लोग आणविक बिजलीघरों का नाम सुनते ही सिहर उठते हैं। इसी तरह रासायनिक खाद, लुगदी बनाने, कीटनाशक दवाओं के बनाने और चमड़ा निर्माण करने आदि के कुछ ऐसे दूसरे उद्योग हैं जो वायु प्रदूषण फैलाते हैं। इतना ही नहीं, कई उद्योग तो वायु प्रदूषण के साथ-साथ मिट्टी और पानी का भी प्रदूषण करते हैं।

पर्यावरणीय प्रदूषण के प्रकार

पारिस्थितिकीय विज्ञान के अनुसार पृथ्वी को तीन प्रमुख भागों में बाँटा जा सकता है—(1) **स्थलमण्डल** (Lithosphere), (2) **वायुमण्डल** (Atmosphere) तथा (3) **जलमण्डल** (Hydrosphere)। अतः प्रदूषण मुख्यतः इन्हीं तीन क्षेत्रों में होता है। प्रदूषण के अन्य स्रोतों में हम उन स्रोतों को भी सम्मिलित करते हैं जो अत्यधिक जनसंख्या वृद्धि, वैज्ञानिक आविष्कारों तथा रासायनिक व भौतिक परिवर्तनों के कारण विकसित होते हैं। इनमें ध्वनि (Sound), रेडियोधर्मिता (Radioactivity) तथा तापीय (Thermal) स्रोत प्रमुख हैं। अतः पर्यावरणीय प्रदूषण के प्रमुख प्रकार निम्नांकित हैं—

(1) मृदीय प्रदूषण—मृदीय प्रदूषण का कारण मृदा में होने वाले अस्वाभाविक परिवर्तन हैं। प्रदूषित जल व वायु, उर्वरक, कीटाणुनाशक पदार्थ, अपतृणनाशी पदार्थ इत्यादि मृदा को भी प्रदूषित कर देते हैं। इसके काफी हानिकारक प्रभाव होते हैं तथा पौधों तक की वृद्धि रुक जाती है, कम हो जाती है अथवा उनकी मृत्यु होने लगती है। अगर मृदीय स्वरूप, मृदीय संगठन, मृदीय जल व वायु तथा मृदीय ताप में अस्वाभाविक परिवर्तन लाने का प्रयास करते हैं तो इसका जीव-जन्तुओं पर अत्यन्त हानिकारक प्रभाव होता है।

(2) जल प्रदूषण—जल में निश्चित अनुपात में खनिज, कार्बनिक व अकार्बनिक पदार्थ तथा गैसें होती हैं। जब इसमें अन्य अनावश्यक व हानिकारक पदार्थ घुल जाते हैं तो जल प्रदूषित हो जाता है। कूड़े-करकट, मल-मूत्र आदि का नदियों में छोड़ा जाना, औद्योगिक अवशिष्टों एवं कृषि पदार्थों (कीटाणुनाशक पदार्थ, अपतृणनाशक पदार्थ व रासायनिक खादें आदि) से निकले अनावश्यक पदार्थ जल प्रदूषण पैदा करते हैं। साबुन इत्यादि तथा गैसों के वर्षा के जल में घुल कर अम्ल व अन्य लवण बनाने से भी जल प्रदूषित हो जाता है। भारत में जल प्रदूषण एक प्रमुख समस्या है।

(3) वायु प्रदूषण—वायु में गैसों की अनावश्यक वृद्धि (केवल ऑक्सीजन को छोड़कर) या उसके भौतिक व रासायनिक घटकों में परिवर्तन वायु प्रदूषण उत्पन्न करता है। मोटर गाड़ियों से निकलने वाला धुआँ, कुछ कारखानों से निकलने वाला धुआँ तथा वनों व वृक्षों के कटाव से वायु में ऑक्सीजन, नाइट्रोजन व कार्बन

डाइऑक्साइड का सन्तुलन बिगड़ जाता है तथा यह मनुष्यों व अन्य जीवों पर प्रतिकूल प्रभाव डालने लगता है। दहन, औद्योगिक अवशिष्ट, धातुकर्मी प्रक्रियाएँ कृषि रसायन, वनों व वृक्षों को काटा जाना, परमाणु ऊर्जा, मृत पदार्थ तथा जनसंख्या विस्फोट इत्यादि वायु प्रदूषण के प्रमुख कारण हैं।

(4) ध्वनि प्रदूषण—तीखी ध्वनि या आवाज से ध्वनि प्रदूषण पैदा होता है। विभिन्न प्रकार के यन्त्रों, वाहनों, मशीनों, जहाजों, राकेटों, रेडियो व टेलीविजन, पटाखों, लाउडस्पीकरों के प्रयोग से ध्वनि प्रदूषण विकसित होता है। ध्वनि प्रदूषण प्रत्येक वर्ष दोगुना होता जा रहा है। ध्वनि प्रदूषण से सुनने की क्षमता का ह्रास होता है, रुधिर ताप बढ़ जाता है, हृदय रोग की सम्भावना बढ़ जाती है तथा तन्त्रिका तन्त्र सम्बन्धी रोग हो सकते हैं। कुछ प्रकार की ध्वनियाँ सूक्ष्म जीवों को नष्ट कर देती हैं। इससे जैव अपघटन क्रिया में बाधा उत्पन्न होती है।

(5) रेडियोधर्मी व तापीय प्रदूषण—रेडियोधर्मी पदार्थ पर्यावरण में विभिन्न प्रकार के कण और किरणें उत्पन्न करते हैं। इसी प्रकार, तापीय प्रक्रमों से भी कण निकलते हैं। ये कण व किरणें जल, वायु तथा मिट्टी में मिलकर प्रदूषण पैदा करते हैं। इस प्रकार के प्रदूषण से कैंसर, ल्यूकेनिया इत्यादि भयानक रोग उत्पन्न होते हैं तथा मनुष्यों में रोग अवरोधक शक्ति कम हो जाती है। बच्चों पर इस प्रकार के प्रदूषण का अधिक प्रभाव पड़ता है। नाभिकीय विस्फोट, आणविक ऊर्जा संयन्त्र, परमाणु भट्टियाँ, हाइड्रोजन बम, न्यूट्रान व लेसर बम आदि इस प्रकार के प्रदूषण के प्रमुख कारण हैं।

भारत में पर्यावरणीय प्रदूषण के कारण

यद्यपि उपर्युक्त विवरण से ही पर्यावरणीय प्रदूषण के कारणों का पता चल जाता है तथापि हम यहाँ इसके मूल कारणों पर प्रकाश डालना चाहेंगे। इसके निम्नलिखित प्रमुख कारण हैं—

(1) भौतिक विकास को अत्यधिक महत्त्व—सारे ही विश्व में पिछली शताब्दी से भौतिक विकास ही मानव के विकास का पर्याय बन गया है। विकास से आशय हम उपभोग की बढ़ती हुई दर से लगाते हैं। प्रति व्यक्ति आय, प्रति व्यक्ति बिजली का उपभोग, वार्षिक राष्ट्रीय उत्पादन की दर इस विकास के मापदण्ड बन गए हैं। विकास की प्रक्रिया में निरन्तर वृद्धि एक आवश्यक तत्त्व मानी जाती है। निरन्तर वृद्धि से आशय है कि जो वैभव आज की पीढ़ी को प्राप्त हो गया है कम-से-कम उतना वैभव, यदि अधिक सम्भव नहीं तो, अगली पीढ़ी को भी मिलना चाहिए। विकास का लक्ष्य वास्तव में अगली पीढ़ी को और अधिक भौतिक सुखों को प्रदान करना है। इस दृष्टिकोण के वास्तविक परिणाम दो हुए—**एक**, प्रकृति को उपभोग की जाने वाली वस्तु माना जाने लगा और उसका अधिकाधिक दोहन किया जाने लगा। **द्वितीय**, समाज का अर्थ केवल मनुष्यों का समाज ही माना जाने लगा। मनुष्य भूल गया कि प्रकृति के समक्ष वह अनेक जीव-जन्तुओं तथा पेड़-पौधों की भाँति ही एक प्राणी है। उसे सभी के साथ सन्तुलन बनाकर चलना है। अपने बढ़ते हुए भोग की लालसा ने मनुष्य को प्रकृति के प्रति कसाई बना दिया है। उसने न केवल पुन: पूरे न किए जा सकने वाले प्रकृति के भण्डारों को खाली किया वरन् पेड़-पौधों व जीव-जन्तुओं के लिए भी खतरा पैदा कर दिया। वैज्ञानिकों का अनुमान है कि बीसवीं शताब्दी के अन्त तक वनस्पति और जीव-जन्तुओं की डेढ़ करोड़ प्रजातियाँ अपना अस्तित्व खो बैठेंगी।

(2) विकास के लिए असन्तुलित कार्यक्रम—विकास के लिए जो योजनाएँ बनाई गईं वे असन्तुलनों से भरी पड़ी हैं। खेती योग्य भूमि बढ़ाने के लिए और उद्योगों की माँगों की आपूर्ति के लिए हम जंगल तो काटते चले गए, परन्तु उतने ही नए जंगल नहीं लगाये गए। हम बाँध तो बनाते चले गए पर यह अनुमान नहीं लगाया कि एक दिन जब ये बाँध गाद से भर जायेंगे तो इनका क्या उपयोग होगा। हमने प्रकृति की लय और गति में असन्तुलन पैदा कर दिया। खतरनाक उद्योगों से निकलने वाला स्राव कहाँ जाएगा और उससे क्या-क्या खतरे पैदा होंगे, यह अनुमान नहीं लगाया गया। जहरीली गैसों और रेडियोधर्मिता की रोकथाम कैसे की जाए इस पर विचार नहीं किया गया। इन असन्तुलित विकास कार्यक्रमों का स्वाभाविक परिणाम था—जल और वायु का प्रदूषण।

(3) समाकलित जीवन दर्शन एवं शैली का अभाव—भोगवादी जीवन-पद्धति में विकास के नैतिक आधारों की पूर्ण उपेक्षा कर दी गई है। मनुष्य के जीवन की आवश्यकताएँ पूरी हों यह प्रयास तो किया ही जाना चाहिए, परन्तु मन की लालसाओं और तृष्णाओं का तो कभी अन्त नहीं होता। उनको बढ़ाते रहने में कहाँ तक बुद्धिमानी है। आज भी विश्व के करोड़ों लोग भूख से परेशान हैं। कुछ लोगों के भोग के लिए बड़ी संख्या में गरीबों को भूखे रखने को विकास का नाम दिया जा रहा है। आज से 2500 वर्ष पहले महात्मा बुद्ध ने मानवों को सन्देश दिया था कि मानव-जीवन में दु:ख का स्रोत तृष्णा है और तृष्णा को समाप्त करने से ही दु:ख का

निवारण हो सकता है। हमारे युग में भी महात्मा गांधी ने आवश्यकताओं को कम-से-कम करने का सन्देश दिया था। अंहिसा, असंग्रह, सत्य, स्वदेशी, कायिक श्रम, छुआछूत की भावना का त्याग, ब्रह्मचर्य, अस्वाद और निर्भयता जीवन-यापन के नियम बनाए जाने चाहिए। विकास की सही व्याख्या मनुष्य और समाज के जीवन में सुख, शान्ति और सन्तोष के रूप में की जानी आवश्यक है, अन्यथा पर्यावरणीय प्रदूषण और मानव के मानसिक प्रदूषण से छुटकारा नहीं मिल सकता। जब तक मनुष्य का प्रकृति के प्रति आक्रामक दृष्टिकोण नहीं बदलता तब तक सुख और शान्ति की कल्पना भी नहीं की जा सकती।

अस्तु; पर्यावरणीय प्रदूषण के मूल कारणों के विश्लेषण के बाद उन उपायों पर भी विचार किया जाना चाहिए जो इस प्रदूषण को दूर करने के लिए हमारे देश में उठाए गए हैं।

पर्यावरणीय प्रदूषण दूर करने के लिए अपनाए गए प्रमुख उपाय

हमारे देश में पर्यावरणीय प्रदूषण की रोकथाम के लिए एवं पर्यावरणीय सुरक्षा के लिए निम्नलिखित प्रमुख उपायों को अपनाया गया है—

(1) कानूनी उपाय—भारत सरकार ने कारखाना (संशोधन) अधिनियम 1987 पारित किया है जिसका उद्देश्य कारखानों में लगे श्रमिकों को सुरक्षा प्रदान करना एवं पर्यावरणीय प्रदूषण को नियन्त्रित करना है। इस अधिनियम के अनुसार, यदि किसी भी उद्योग में कुछ खतरनाक प्रक्रियाएँ लागू होती हैं तो उस उद्योग पर नियन्त्रण किया जाएगा। खतरनाक प्रक्रियाओं से आशय यह है कि उस उद्योग में खनिज पदार्थों के प्रयोग से या उत्पादित वस्तुओं अथवा अर्द्धनिर्मित वस्तुओं या कारखाने से होने वाले स्राव (Effluents) से वहाँ के श्रमिकों के स्वास्थ्य पर या वहाँ के सामान्य पर्यावरण पर बुरा प्रभाव पड़ता हो। इसके नियन्त्रण के लिए तीन प्रकार की समितियों की स्थापना का प्रावधान किया गया है—मौका मुआयना समिति, जाँच समिति एवं सुरक्षा समिति। राज्य सरकारों को यह अधिकार दिया गया है कि वे उन कारखानों को अनुमति प्रदान करने से पहले विस्तृत जाँच कर लें जिनमें किसी भी प्रकार की खतरनाक प्रक्रियाओं के होने की सम्भावना है। इसी प्रकार, पर्यावरण (सुरक्षा) अधिनियम, 1986 भी पारित किया गया है। पर्यावरण को प्रदूषित होने से बचाने के लिए और प्रदूषित पर्यावरण के सुधार के लिए ही इस कानून में प्रावधान किया गया है।

(2) सार्वजनिक हित में अभियोजन—देश के सर्वोच्च न्यायालय ने पर्यावरणीय सुरक्षा के क्षेत्र में लोकहित अभियोजन की अनुमति देकर एक क्रान्तिकारी कदम उठाया है। लोकहित अभियोजन वे मुकदमे होते हैं जो किसी भी जागरूक नागरिक की लोकहित में दिए गए प्रार्थना-पत्र से शुरू होते हैं। देहरादून में चूने की खानों के ठेकेदारों के खिलाफ ऐसे ही लोकहित मुकदमे का जिक्र हमने ऊपर किया है। इसी प्रकार का एक और प्रसिद्ध अभियोजन एम० सी० मेहता बनाम यूनियन ऑफ इण्डिया है जिसमें सर्वोच्च न्यायालय ने कानपुर में कार्यरत चमड़ा उद्योग के सभी कारखानों को तब तक के लिए बन्द करने का निर्देश दिया था जब तक कि वे अपने यहाँ ऐसे प्राथमिक शुद्धि संयन्त्र न लगा लें जिनमें उनसे होने वाले स्राव गंगा नदी में डालने से पहले शुद्ध किए जा सकें।

(3) जन शिक्षा—जन संचार माध्यमों द्वारा जनता में पर्यावरणीय सुरक्षा एवं प्रदूषण के प्रति जागरूकता लाने के प्रयास भी किए जा रहे हैं। पर्यावरणीय शिक्षा के नाम से एक पृथक् विषय स्कूलों और कॉलेजों के पाठ्यक्रमों में सम्मिलित किए जाने पर भी जोर दिया जा रहा है।

(4) पर्यावरणीय सुरक्षा सम्बन्धी अनुसन्धान को प्रोत्साहन—पर्यावरणीय सुरक्षा के क्षेत्र में अनुसन्धानों को प्रोत्साहित किया गया है। वनों तथा पर्यावरण मन्त्रालय ने पर्यावरण सम्बन्धी संरक्षण और सुरक्षा के लिए अब तक लगभग 636 अनुसन्धान परियोजनाओं को समर्थन दिया जिन पर 27·96 करोड़ रुपये का व्यय होना है। इनमें से 262 प्रोजेक्ट, जिन पर 8·80 करोड़ रुपया खर्च हुआ, पूर्ण हो गए हैं। बाकी 345 प्रोजेक्ट अभी चलाए जा रहे हैं। इन अनुसन्धान परियोजनाओं को सरकारी, गैर-सरकारी, स्वशासी संस्थाओं और विश्वविद्यालयों के माध्यम से चलाया जा रहा है।

(5) ऐच्छिक संघ—पर्यावरणीय सुरक्षा के क्षेत्र में देश के अनेक ऐच्छिक संघ भी क्रियाशील हैं जिनके सामाजिक कार्यकर्ता प्रदूषण के खिलाफ संघर्षरत हैं। गढ़वाल का 'चिपको आन्दोलन' इन ऐच्छिक संघों की सफलता का बहुत सटीक उदाहरण है।

(6) संयुक्त राष्ट्र संघ के प्रयास—वास्तव में, पर्यावरणीय प्रदूषण का एक अनिवार्य पक्ष अन्तर्राष्ट्रीय भी है। पर्यावरण तो सबका साँझा होता है इसलिए मानव का भविष्य भी साँझा है। जैसा हमने ऊपर बताया भी है,

संयुक्त राष्ट्र संघ ने इस विषय पर विशेष कमीशन की नियुक्ति की थी जिसने पर्यावरणीय सुरक्षा के लिए अनेक महत्त्वपूर्ण सुझाव दिए हैं।

पर्यावरणीय प्रदूषण के उन्मूलन हेतु सुझाव

पर्यावरणीय प्रदूषण की समस्या के समाधान हेतु निम्नलिखित सुझाव दिए जा रहे हैं—

(1) कानूनों का निष्ठापूर्वक पालन—कानून बनाने से ही समस्या हल नहीं हो जाती। सबसे अधिक आवश्यक है कि उनका कड़ाई से पालन कराया जाए। इसके लिए उपयुक्त अधिकारियों एवं कर्मचारियों की भी आवश्यकता है। इसके लिए एक अलग सेना का गठन किया जाए और कर्मचारियों की भर्ती और प्रशिक्षा विशिष्ट ढंग से की जाए।

(2) जन जागरण एवं जन सहयोग—वास्तव में एक राष्ट्रीय पर्यावरण नीति के अन्तर्गत पर्यावरण के सम्बन्ध में जन शिक्षा के प्रसार की तीव्र आवश्यकता है। जब तक जन-मानस प्रकृति, मनुष्य और समाज के गहरे रिश्ते को नहीं समझेगा तब तक पर्यावरणीय प्रदूषण बना ही रहेगा। इसीलिए आवश्यक है कि पर्यावरण की सुरक्षा के लिए जन आन्दोलन चलाया जाए और उसमें जन सहभागिता को बढ़ाया जाए।

(3) विकेन्द्रित विकास—समाज की रचना का आधार विकेन्द्रित व्यवस्था पर रखा जाना चाहिए। प्राणवायु, स्वच्छ और जीवन्त जन, खुराक, आश्रय तथा वस्त्र की अनिवार्य आवश्यकताओं की पूर्ति आस-पास के क्षेत्र से हो सके, इसके लिए विकेन्द्रित विकास की योजनाएँ बनानी होंगी। इस दृष्टि से हमें पुन: गांधी जी के ग्राम-स्वराज्य की अवधारणा की प्रासंगिकता को समझना होगा। सीधे-सादे शब्दों में, विकास के नियोजन की इकाई गाँवों को बनाना होगा। जब उपभोग घर-घर और गाँव-गाँव में होता है तो उत्पादन केन्द्रित ढंग से क्यों किया जाए? विकेन्द्रित उत्पादन से प्रदूषण की समस्या स्वत: हल हो जाएगी क्योंकि उच्च ऊर्जा प्रयोग करने वाले और अपनी बड़ी-बड़ी चिमनियों से धुआँ उगलने वाले कारखाने ही वहाँ नहीं होंगे। लघु उद्योगों के लिए आणविक या ताप बिजलीघरों की आवश्यकता भी नहीं है। इस व्यवस्था में ऊर्जा की प्राथमिकता भी बदल जाएगी। इसमें पशु शक्ति, बायोगैस, सौर ऊर्जा, पवन शक्ति, नदियों के सीधे बहाव से जल, विद्युत और लहरों की शक्ति से ही काम किया जा सकेगा।

(4) समाकलित जीवन शैली—आज एक समाकलित जीवन दर्शन एवं शैली की आवश्यकता है। बहुत-से लोग, जिसमें विद्वान् भी शामिल हैं, कहते हैं कि विकेन्द्रीकरण और सादगी भारत जैसे गरीब देशों के लिए ही हो सकती है। परन्तु ऐसा नहीं है। संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण और विकास आयोग ने समृद्ध देशों को स्पष्ट चेतावनी दी है कि जब तक वे सादगी का जीवन नहीं बिताते, तब तक विश्व में न तो पर्यावरण की ही रक्षा हो सकती है और न विकास ही सम्भव है। यूरोप में अधिकांश देश पर्यावरणीय सुरक्षा के प्रति चिन्तित हैं। वहाँ कोई भी राजनेता आज पर्यावरण के कारक की उपेक्षा नहीं कर सकता। चुनावों में हुई पर्यावरणवादियों की विजय इस तर्क को सिद्ध करती है। यूरोप का हरित आन्दोलन पश्चिमी जगत के सामने एक नया रास्ता रख रहा है जिसे वे सीधा रास्ता कहते हैं। यह रास्ता वाम और दक्षिण दोनों ही पंथों से सर्वथा अलग है। इस आन्दोलन के घोषणा-पत्र को पढ़ने से ऐसा लगता है कि मानो वह गांधी के 'हिन्द स्वराज्य' का ही नवीन रूप हो।

पर्यावरणीय सुरक्षा और पर्यावरणीय प्रदूषण की रोकथाम सारे विश्व के सामने गम्भीरतम समस्याओं में से एक है। आज विश्व के सम्मुख तीन सबसे बड़ी चुनौतियाँ हैं—युद्ध, भूख और पर्यावरणीय प्रदूषण। ये तीनों एक-दूसरे से जुड़ी हुई हैं। इनमें से एक की भी उपेक्षा नहीं की जा सकती। इनके सफल समाधान पर ही मानव जाति का भविष्य टिका है। भारत इसका अपवाद नहीं है। भारत की इस दिशा में जिम्मेदारी और भी अधिक है क्योंकि यह आध्यात्मिक खोज और प्रयोगों का देश रहा है। पर्यावरणीय सुरक्षा के क्षेत्र में भी इसे अविलम्ब पहलकदमी करनी चाहिए। ●